नागार्जुन की कविताओं में सर्वहारा की आशा

04

प्रो. सुधा सिंह
(हिन्दी विभाग)
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद

कार्तिकेय सिंह बी.टेक
वी. आईटी विश्वविद्यालय, वेल्लोर

सारांश

नागार्जुन की कविता समष्टि की कविता है उसमें सर्वहारा की आशा आकांक्षा का सजीव चित्रण उभरा है। पीड़ित जन की चेतन ही नागार्जुन के काव्य की भूमि तैयार करती हैं वे शोषितों, गरीबों और मजदूरों के जीवन के यथार्थ को अपनी कविताओं में स्थान देते हैं और उनमें एक स्वस्थ भविष्य के लिए उम्मीद जगाते हैं। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और 20वीं शताब्दी के आरंभिक दशक में भारत में सामंती व्यवस्था ने गरीबों के प्रति एक शोषण चक्र चलाया था। इस शोषण चक्र में पूंजीवाद तथा अफसर शाही को बल मिल रहा था। गरीबों के लिए दो जून की रोटी जुटा पाना भी मुश्किल हो गया था।

नागार्जुन की रचना धर्मिता के कई छोर हैं और दूसरों की अपेक्षा इनका रचना संसार अधिक व्यापक लें संस्कृत, मैथिली बंग्ला आदि पर इनका समान अधिकार है और बौद्ध भिक्षु के रूप में उन्होंने लंबी यात्राएं की हैं और नए–नए जीवन अनुभव प्राप्त करते रहे हैं। जीवन में ऐसा रमा–पगा व्यक्ति जब उस जीवन अनुभवों के रचना में उतरता है तो कविता का माध्यम उसके लिए अपर्याप्त प्रतीत होता है। प्रयाग नागार्जुन उन सामाजिक विसंगतियों और राजनीतिक चालबाजियों का प्रतिकार करते हैं जो अपने जाल में फंसा कर जनता के शरीर से रक्त का एक–एक वेज और लेती है विशेष कर भारतीय किसानों और मजदूरों की व्यवस्था को वह सहन नहीं कर पाते हैं फल स्वरुप शोषक वर्ग पर आक्रोश व्यक्त करते हैं वे जनशक्ति में 21 फरवरी 1965 को लिखते हैं–

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊं?
जन कवि हूं मैं साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं?
जन कवि हूं मैं क्यों चाटूं थूक तुम्हारी?
श्रमिकों पर क्यों चलने दूं बंदूक तुम्हारी?[1]

नागार्जुन की कविताओं का स्थाई भाव प्रतिहिंसा है और यही प्रतिहिंसा उनके काव्य की शक्ति है यह यह प्रति हिंसा व्यक्तिगत न होकर समस्त जनता प्रति हिंसा है जिसके वह प्रतिनिधि कवि हैं नागार्जुन की प्रतिहिंसा ने किसी को भी नहीं छोड़ा चाहे वह महात्मा गांधी हो नेहरू हो या फिर सामान्य नौकरशाही या पुलिस अफसर। नेहरू के शासनकाल की उपलब्धियों के विषय में वह कहते हैं–

हम चावल लाते एक किलो दस का दे आते नोट मगर
यों सिकुड़े रहते सपने में, सिलवाते ऊनी कोट मगर
गालियाँ छलकती, बैलों की जोड़ी को देते वोट मगर
खुलदे खिलते कुछ गाल और
तुम रह जाते दस साल और।

नागार्जुन ने कवि के उत्तरदायित्व को भलीभांति निभाया है। नागार्जुन सत्ता व्यवस्था एवं पूंजीवाद के प्रति आक्रोश व्यक्त करने में निरंतर अग्रणी रहे हैं। उनकी सहानुभूति का पात्र जन–सामान्य मात्र है। जन–सामान्य की विषम परिस्थितियों को उनकी समस्त बिकरालता के साथ कवि प्रस्तुत करता है–

मकान नही खाली है
दुकान नही खाली है
खाली नही ट्राम खाली नही ट्रेन
खाली नही माइन्ड खाली नही ब्रेन

खाली नही हाथ खाली है पेट
खाली है थाली खाली है प्लेट।[3]

जन–नेता अपने अनुयायियों की दशा सुधारने के बदले अपने स्वार्थ साधन में रह रहे हैं। उनकी कथनी और करनी में गहरा अंतर है। गरीब जनता का अनुलिखित आरोप पूर्णतरूसत्य है–

हमें सीख दो शांति और संयम जीवन की
अपने खातिर करो जुगाड़ अपरमित धन की
घर बाहर भर जाना तुम्हारा
रत्ती भर भी हुआ नहीं उपकार हमारा।[4]

नागार्जुन की कविता इसी लोक धर्मा सौंदर्य शास्त्र को रचती हुई सर्वहारा को, जो परिश्रम से थक कर चूर है, शोषण ने जिसके दुखों को विशाल रूप दे दिया है, उसे साहस और भरोसा देती आई है।

नागार्जुन की जनवादी चेतन बहुत प्रखर थी। इन्होंने तुच्छ से तुच्छ लोगों को भी अपनी कविता में स्थान दिया, उन्हें नायक बनाया। इन्होंने अपने आप को जन–सामान्य के साथ एकाकार कर लिया था। सामाजिक और आर्थिक विषमता को जितने जबरदस्त एवं प्रभावशाली ढंग से नागार्जुन ने चित्रित किया है उतना किसी और ने नहीं। देश की जनता का दुख–दर्द पुरजोर ताकत के साथ नागार्जुन की कविताओं में व्यक्त हुई है। जनता अपने अनुयायियों की दशा सुधारने के बदले अपने स्वार्थ साधन में रत हैं। अपनी कविता घर से बाहर निकलेगी कै से लाजवंतीश् में वह वर्तमान व्यवस्था के चलते गांव की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कहते हैं –

नीचे निपट गरीबी ऊपर ठाट–बाट की रजत जयन्ती
शर्म नआती मना रहे वे महंगाई की रजत जयन्ती।[5]

नागार्जुन ने 1960 की कविताओं में राजनीतिक घटनाओं को विषय बनाया, जो राजनीतिक जीवन का पूरा–पूरा आंकलन करती है। राजनीतिक कविताएं इनकी दो प्रकार की हैं एक में तो उन्होंने सरकार और शोषण तंत्र के विरोध में लिखा है तो दूसरे में मेहनतकश जनता के संघर्ष के पक्ष में। शासन की बंदूक कविता में भी लिखते हैं–

जली ठूंठ पर बैठकर,
गयी कोकिला कूक ,
वाल न बांका कर सकी,
शासन की बन्दूक।[6]

वह गरीबों और शोषितों के हिमायती कवि थे उनका मानना था कि जो अन्नदाता है उसे ही भूखा सोना पड़ता है भूखे व्यक्ति के लिए अन्न ही ब्रह्म है। भूखा व्यक्ति भजन नहीं कर सकता इसलिए उन्होंने मजदूरों को हमेशा लड़ते रहने की सलाह दी है–

भूखे मरते हो बच्चों तो यों ही मत रह जाओ
कीड़ों और मकोड़ों जैसे मत प्राण–गवाओं।[7]

उनकी कविता मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण है उनका भावुक हृदय किसानों और मजदूरों की पीड़ा को देखकर द्रवित हो उठता है। वे स्वयं को आमजन से भिन्न नहीं देखते उनकी यही एकरूपता उनकी कविताओं में एक विलक्षणता ले आती है। इसी लोकप्रियता के कारण नामवर सिंह कहते हैं–इस बात में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि तुलसीदास के बाद नागार्जुन अकेले कवि हैं जिनकी कविता की पहुंचे किसानों की चौपाल से लेकर काव्य रसिकों की गोष्ठी तक है।[8]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन सच्चे अर्थों में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका संपूर्ण काव्य, जीवन के यथार्थ को उदघाटित करता है। नागार्जुन की काव्य–चेतना का गहनता से निरीक्षण करने पर हम पाते हैं कि वह पुराने समाज को बदलकर एक नया समाज बनाना चाहते हैं, जिसमें जनसाधारण की आवाज को मजबूती मिले, वल मिले। अतः नागार्जुन एक सशक्त व्यंगकार थे। उनकी कविताओं में आस्था, दृढ़ता और सहानुभूति की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है जिसने उनकी वाणी में एक जादुई शक्ति का संचार कर दिया है। यह निर्विवाद सत्य है कि कबीर के बाद हिंदी कविता में नागार्जुन से बड़ा व्यंग्यकार अभी तक कोई नहीं हुआ। काव्य संसार में उनकी एक अलग ही पहचान है। समकालीन कविताओं का बखूबी पालन करते हुए उन्होंने जन सामान्य की मुक्ति का स्वर संपूर्ण जोश के साथ उठाया। उनकी अत्यंत प्रसिद्ध कविता अकाल और उसके बादश् लोकप्रियता और कलात्मक सौंदर्य के मणिकांचन सहयोग का एक उल्लेखनीय उदाहरण है–

कई दिनों तक चुल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
चमक उठी घर भर की आँखे कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखे कई दिनों के बादस[9]

अतः हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नागार्जुन की कविताओं में उनके समय की धड़कन को महसूस किया जा सकता है। समय और समाज की विसंगतियों की खबर लेती ये कविताएं अपने अंचल और लोक कोद्वन्द्वात्मक दृष्टि से देखती है। कवि की दृष्टि केवल लोक के सकारात्मक पक्ष पर ही नहीं रहती वह उसके नकारात्मक पक्षों को भी देखती है और उसकी आलोचना करती है। नागार्जुन की कविता में जिस लोग के दर्शन होते हैं उसे भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। वह पूरे विश्व में संघर्षरत है। इसके साथ ही भाषा की सहजता, जातिय बोध और लोकधर्मिता उनके काव्य की विशिष्ट विशेषता है। उनकी कविता धरती की कविता है, जहां लोक जीवन अपने वैविध्य में प्रस्तुत हुआ है। नामवर जी ने बड़ा ही सटीक कहा है–श्मिथिला के ठेठ गांव की मिट्टी से लिपटाया यात्री देश देशांतर के अनुभव और दृश्यों से इतना संपृक्त होता है कि सामाजिक चेतना उसके सरस्वती में स्वतः स्थापित हो उठी। कहीं व्यंग्य की तीव्र बौछार तो कहीं करुण को मार्मिक उत्स, कही गंवई प्रकृति के यथार्थ चित्र, तो कहीं शहरी ढोंग का उद्घाटन। भाषा भी तदनुरूप कहीं प्राजंलता तो कहीं ठेठ बोल–चाल।[10]

संदर्भः–

1. नागार्जुन रचनावली भाग 1, सम्पादक–शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, संस्मरण–2003, पृ0 सं0–400
2. नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ, भाग –2 पृ0 सं0–163
3. हंस दिसम्बर 1951
4. हंस अक्टूबर 1950 स्वदेशी साशक
5. नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ, भाग –2 पृ0 सं0–163
6. वही पृ0 सं0–169
7. नागार्जुन की कविता संग्रह सतरंगें पंखों वाली
8. डॉक्टर नामवर सिंह, नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएँ, भूमिका पृ0 सं0–10
9. नागार्जुन की कविता–अकाल और उसके बाद
10. नागार्जुन मूल्यांकन–पुनर्मूल्यांकन, सम्पादकरूपरमा नन्द श्रीवास्तव, संस्करण 2006, पृ0 सं0–21